साप्ताहिक
Live not just breaTHE
MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 5, अंक : 52 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 19 अगस्त से 25 अगस्त 2020 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

बढ़ते प्रदूषण से बढ़ रही है एंटीबायोटिक प्रतिरोध की समस्या

दुनिया भर में एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स, स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। इसके विषय में हाल ही में किए एक नए शोध से पता चला है कि यह केवल बढ़ते एंटीबायोटिक दवाओं के अनावश्यक उपयोग के कारण ही नहीं हो रहा है, इसके लिए बढ़ता प्रदूषण भी जिम्मेवार है। यह शोध यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया के शोधकर्ताओं द्वारा किया गया है, जोकि जर्नल माइक्रोबियल बायोटेक्नोलॉजी में प्रकाशित हुआ है।

वैज्ञानिकों ने प्रदूषण और एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स के सम्बन्ध को समझने के लिए जीनोमिक एनालेसिस की मदद ली है। जिससे पता चला है कि भारी धातु के प्रदूषण और एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स के बीच एक मजबूत सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों के अनुसार जिस मिटटी में भारी धातुओं की अधिकता थी उसमें बड़ी मात्रा में वो बैक्टीरिया मौजूद थे जिनके जीन में एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स के गुण मौजूद थे।

शोधकर्ताओं के अनुसार इस मिटटी में एसिडोबैक्टीरियोसाय, ब्रैडिरिज़ोबियम और स्ट्रेप्टोमी जैसे बैक्टीरिया मौजूद थे। इन बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक-प्रतिरोधी जीन होते हैं जिन्हें एआरजी के रूप में जाना जाता है। जिसकी वजह से इनपर वैनकोमाइसिन, बेसिट्रेसिन और पोलीमैक्सिन जैसे एंटीबायोटिक का असर नहीं होता है। इन तीनों दवाओं का उपयोग मनुष्यों में संक्रमण के इलाज के लिए किया जाता है।

इस शोध से जुड़े शोधकर्ता जेसी सी थॉमस के अनुसार इन बैक्टीरिया में जो एआरजी जीन होते हैं, वो इन्हें मल्टीड्रग रेसिस्टेन्स बनाने के साथ-साथ इन भारी धातुओं से भी बचाते हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार जब ये एआरजी मिट्टी में मौजूद थे, तब उन सूक्ष्मजीवों में आर्सेनिक, तांबा, कैडमियम और जस्ता सहित कई धातुओं के लिए, धातु प्रतिरोधी जीन (एमआरजी) भी मौजूद थे।

थॉमस के अनुसार वातावरण में जैसे-जैसे एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग बढ़ रहा है यह सूक्ष्मजीव उतना ज्यादा इन दवावों के प्रति अपनी प्रतिरोधी क्षमता को विकसित कर रहे हैं। लेकिन इन बैक्टीरिया में मौजूद जीन केवल एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति ही रेसिस्टेंट नहीं होते इसके साथ ही यह कई अन्य यौगिकों के प्रति भी प्रतिरोध विकसित करते हैं जो सेल्स को नुकसान पहुंचा सकते हैं। जिसमें यह हैवी मेटल्स भी शामिल हैं।

पब्लिक हेल्थ कॉलेज में प्रोफेसर ट्रेविस ग्लेन के अनुसार चूंकि एंटीबायोटिक दवाओं के विपरीत, भारी धातुएं पर्यावरण में आसानी से खत्म नहीं होती इसलिए वो लम्बे समय तक नुकसान पहुंचा सकती हैं। थॉमस के अनुसार एंटीबायोटिक दवाओं का अत्यधिक उपयोग ही केवल एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स का कारण नहीं है। कृषि और जीवाश्म ईंधन, खनन जैसी गतिविधियों के कारण भी यह बढ़ रहा है।

क्या होता है एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स

एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स तब उत्पन्न होता है, जब रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों (जैसे बैक्टीरिया, कवक, वायरस, और परजीवी) में रोगाणुरोधी दवाओं के संपर्क में आने के बाद से बदलाव आ जाता हैं और वो इन दवाओं के प्रति प्रतिरोध विकसित कर लेते हैं। नतीजतन, यह दवाएं इन पर अप्रभावी हो जाती हैं। इसके कारण संक्रमण शरीर में बना रहता है। इन्हें कभी-कभी सुपरबग्स भी कहा जाता है।

दुनिया में कितना बड़ा है एंटीबायोटिक रेसिस्टेंट का खतरा

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि दुनिया में एंटीबायोटिक रेसिस्टेंट एक बड़ा खतरा है। अनुमान है कि यदि इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो 2050 तक इसके कारण हर साल करीब 1 करोड़ लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ सकती है। वहीं विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 2030 तक इसके कारण 2.4 करोड़ लोग अत्यधिक गरीबी का सामना करने को मजबूर हो जाएंगे। साथ ही इससे वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी भारी नुकसान उठाना पड़ेगा।

शोधकर्ताओं के अनुसार इन बैक्टीरिया के बारे में जानना जरुरी है कि समय के साथ यह कैसे विकसित हो रहे हैं। यह हमारे भोजन, पानी के जरिए हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए सही समय पर इनसे निपटना जरुरी है।

सूख रही है राजस्थान की धरोहर खेजड़ी

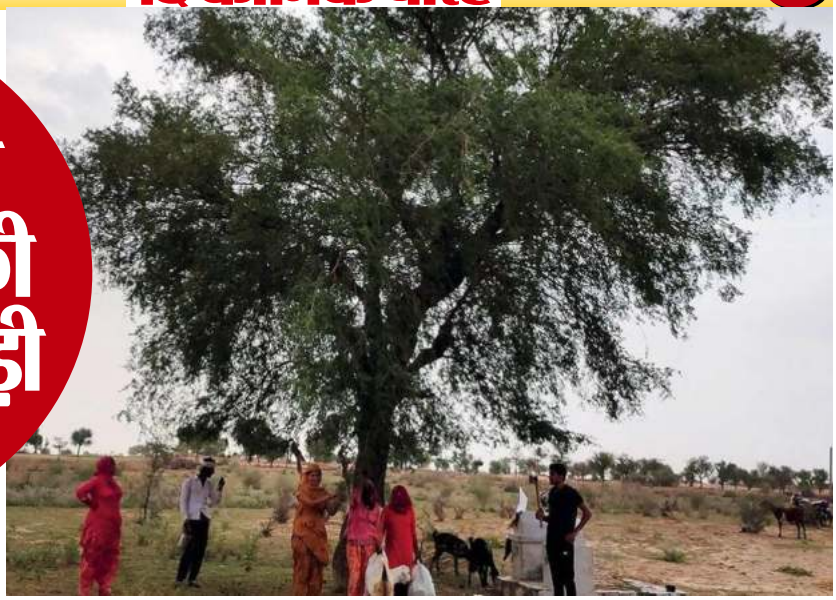

जयपुर। राजस्थान की सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक धरोहर खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) जलवायु परिवर्तन की विभीषिका का सामना कर रहा है। इस पेड़ के गुणों के कारण ही इसे मरू प्रदेश के कल्पवृक्ष की संज्ञा दी जाती है। यह सर्दियों का मरुस्थलीय पाला और गर्मियों के लू मिश्रित उच्च तापमान, दोनों ही परिस्थितियों में सामंजस्य बैठा लेता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी खुद को जीवित रख पाने की इसी अद्भुत विलक्षण क्षमता के चलते ही इसे 1983 में राजस्थान का राज्य वृक्ष घोषित किया गया।

खेजड़ी राजस्थान के अलावा महाराष्ट्र , गुजरात, पंजाब और कर्नाटक राज्य के शुष्क, अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। पंजाब में इसे जंड, हरियाणा में जांड, दिल्ली के आसपास जांटी, सिंधी में कजड़ी, गुजरात में सुमरी, कर्नाटक में बनी और तमिलनाडु में बन्नी या वणि आदि नामों से पुकारा जाता है। भारत के अलावा यह प्रजाति अफगानिस्तान, अरब तथा अफगानिस्तान मे भी पाई जाती है। संयुक्त अरब अमीरात में इसे राष्ट्रीय पेड़ का दर्जा हासिल है जिसे घफ कहा जाता है। सूखे इलाकों में इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण मरुस्थलीकरण को रोकने का गुण है।

क्यों मंडराया संकट?

आज पूरी दुनिया बदलते पर्यावरण और परिवेश के संकट से जूझ रही है। खेजड़ी भी इससे अछूता नहीं रहा है। यह संकट दोहरे स्तर पर है। एक पेड़ के स्तर पर और दूसरा फली (सांगरी) के स्तर पर। किसानों का मानना है कि पहले खेजड़ी की संख्या काफी ज्यादा थी जिससे हल चलाना भी दूभर हो जाता था लेकिन पिछले 30-35 वर्षों के दौरान इनकी संख्या घटकर आधे से भी कम रह गई है। ये पेड़ लगातार सूखते जा रहे हैं। खेजड़ी पर आया संकट बहुआयामी है। कुछ कारण परंपरागत हैं तो कुछ हालिया जलवायु परिवर्तन के चलते भी उभरे हैं। सेंट्रल इंस्टीट्यूट फॉर एरिड हॉर्टिकल्चर (आईसीएआर) बीकानेर के एक शोधपत्र के अनुसार, पेड़ के ह्रास का प्रत्यक्ष कारण है, जड़ छेदक कीट का प्रकोप एवं कवक (फफूंदी) का संक्रमण। सेलोस्टोर्ना स्काब्रेटोर (कोलियोप्टेरा सिरेम्बाइसिडी) एक जड़ छेदक कीट है जो खेजड़ी की कमजोर जड़ों की छाल के द्वारा अंदर प्रवेश कर जाता है और फिर जड़ों के भीतर आड़ी तिरछी सुरंगों का निर्माण करते हुए धीरे-धीरे मुख्य जड़ों को भी खोखला करने लगता है। इस पूरी प्रक्रिया में पेड़ का प्राकृतिक संवहन तंत्र क्षत- विक्षत हो जाता है जिससे आवश्यक पोषक तत्व के आवागमन में उपजा अवरोध अंततः खेजड़ी को सूखने पर मजबूर कर देता है।

कवक या फफूंदी खेजड़ी के पेड़ के सूखने का दूसरा अहम कारण है। गाइनोडेर्मा, फ्यूजेरियम, रहिजक्टोनिया आदि इनकी मुख्य प्रजातियां है। ये भी खेजड़ी के जड़ भाग पर ही आक्रमण करती है। गाइनोडेर्मा कवक से पेड़ पर छतरीनुमा आकार के भूफोड़ा बन जाते हैं। इसको देशी भाषा में इसे भंफोड़ा या विषखोपरा भी कहा जाता है। शुरुआत में भले ही ये भूफोड़े मुलायम प्रतीत हों लेकिन जल्द ही ये कठोर एवं भूरे रंग में तब्दील हो जाते हैं। इनसे भी खेजड़ी का संवहन तंत्र बाधित होने से पहले पत्तियों का पीलापन और फिर पूरा पेड़ सूख जाता है। इनके अतिरिक्त खेजड़ी पर दीमक का आक्रमण बहुत ही परंपरागत, सामान्य एवं अन्य कारण हैं।

जलवायु परिवर्तन का खेजड़ी पर प्रभाव सबसे चिंताजनक है। नीति आयोग की एक हालिया रिपोर्ट में राजस्थान को रेखांकित करते हुए भूजल स्तर गिरने का कारण अत्यधिक जल निष्कर्षण को माना गया। बदलते पर्यावरण से तापमान की वृद्धि ने पहले से ही पानी की कमी से जूझते मरुस्थल में भूजल स्तर को संवेनदनशील स्तर तक गिरा दिया है। ऐसे में खेजड़ी को पर्याप्त पानी न मिल पाने के चलते इसकी जड़ों का तापक्रम तुलनात्मक रूप से बढ़ जाने से इसकी रोग प्रतिरोधकता लगातार घट रही है। इससे यह कीट, फफूंद के प्रति अधिक संवेदनशील हो गया है।

आजकल बुवाई से लेकर कटाई और अनाज निकालने तक हरेक काम में मशीनों का चलन तेजी से बढ़ा है। कृषि का मशीनीकरण एक अन्य कारक है जो इन पेड़ों को खासा प्रभावित कर रहा है। ट्रैक्टर आदि मशीनों से बुवाई आदि के दौरान खेजड़ी की प्राकृतिक व्यवस्था भंग हो जाती है। कभी जड़ें तो कभी तना भाग में कट- खरोंच आदि लगने से कीट, फफूंद आसानी से लग जाते हैं। ये तमाम कीट, कृमि थोड़ी बहुत मात्रा में पहले भी लगते रहे हैं लेकिन जलवायु परिवर्तन ने इनकी सक्रियता एवं तीव्रता दोनों को बढ़ाने में उत्प्रेरक एवं सहायक की भूमिका निभाई है।

सांगरी के उत्पादन पर असर

खेजड़ी के देश-विदेश प्रचलित फल (सांगरी) का उत्पादन भी इस वर्ष अप्रत्याशित रूप से गिर गया है जो अधिक चिंता का विषय है। इस साल लगभग 5-10 प्रतिशत सांगरी ही लगी है और बाकी सब गिरडू में तब्दील हो गई है। ये एक प्रकार की गांठें होती है जिनका कोई उपयोग नहीं है। चुरु के मानपुरा के पूर्व सरपंच नारायण राम भंवरिया बताते हैं कि इस साल मौसम बड़ा ही खराब रहा है। अत्यधिक मात्रा में अंधड़ आने से खेजड़ी की मींझर (फूल भाग) झड़ गए, इसीलिए इसके फल में भारी कमी आई है। इसी गांव की जगवंती देवी अत्यधिक गर्मी और मौसम के अस्थायित्व को इसका जिम्मेवार ठहराती हैं। उनका कहना है कि सांगरी लगी तो थी लेकिन गर्मी के कारण जल्दी ही खोखा में तब्दील हो गई, अंधड़ आने से वे सब झड़ गए और आगे नए फल भी नहीं लग सके। जल ग्रहण विकास समिति के सचिव रामनिवास मानते हैं कि इस वर्ष आकाशीय बिजली के बहुत ज्यादा कड़कने से सांगरी के फल बिजला गए हैं जिससे सांगरी गिरडू में तब्दील हो गई।

जोधपुर स्थित शुष्क वन अनुसंधान संस्थान (आफरी) के वरिष्ठ वैज्ञानिक केके श्रीवास्तव के अनुसार, इस समस्या का कारण एक प्रकार के कीड़े हैं जो पत्तियों पर चिपके रहते हैं। जब गर्मियों में फूल व फल आते हैं तो ये अटैक करते हैं जिससे सांगरी कि जगह गांठें (गिरडू) निकल जाती हैं।

सांगरी, राजस्थान के ग्रामीण अंचल के लोगों के लिए विशेष आर्थिक महत्व रखता है। यह ग्रीष्म काल में ग्रामीण-किसानों (विशेषकर महिला एवं बच्चों) की आमदनी का अच्छा खासा स्रोत है। उत्पादन गिर जाने की वजह से सांगरी का बाजार भाव 1,000 से 1,200 रुपए प्रति किलो हो गया है। सांगरी में लगभग 8-15 प्रतिशत प्रोटीन, 40-50 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 8-15 प्रतिशत शुगर (शर्करा), 8-12 प्रतिशत फाइबर (रेशा), 2-3 प्रतिशत वसा (फैट), 0.4-0.5 प्रतिशत कैल्शियम, 0.2-0.3 प्रतिशत आयरन (लौह तत्व) तथा अन्य सूक्ष्म तत्व पाए जाते हैं जो स्वास्थ्यवर्धक और गुणकारी हैं। कुछ अध्ययनों से ये बात भी सामने आई है कि सांगरी की सब्जी खाने से तेज गर्मी के दौरान शरीर के तापमान को संतुलित बनाए रखने में काफी हद तक मदद मिलती है। यह व्यक्ति विशेष के दैनिक पानी उपभोग को कमतर करने में सहायता करता है। फल के अतिरिक्त इसकी पत्तियों का चारा (लूंग या लूम) पशुओं के लिए भी महत्वपूर्ण है। इसकी सूखी पत्तियां मृदा की उपजाऊ शक्ति को कई गुना बढ़ा देती है क्योंकि यह दलहन कुल का फलीदार वृक्ष है। इसकी जड़ों में राइजोबियम जीवाणु पाए जाते हैं जिससे यह प्राकृतिक रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य भी करता है। मरुस्थल का किसान पानी की कमी के चलते इन वृक्षों का विशेष संरक्षण चाहता है क्योंकि इस पेड़ के नीचे हर फसल की पैदावार अच्छी होती है। इसके तने एवं टहनियों से निकलने वाले हल्के पीले नारंगी रंग के गोंद का भी औषधीय एवं व्यापारिक महत्व है। सबसे बड़ी बात, खेजड़ी की जड़ों के फैलाव से भूमि का क्षरण नहीं होता। इसकी जड़ें रेत को मजबूती से थामे रखती हैं जिससे मरुस्थल के प्रसार पर अंकुश लगता है।

हिन्द महासागर के 50 फीसदी हिस्से पर पड़ चुका है जलवायु परिवर्तन का असर

नईदिल्ली ।हिन्द महासागर सहित दुनिया के 50 फीसद से ज्यादा महासागर पहले ही जलवायु परिवर्तन का दंश झेल रहे हैं, जबकि अनुमान है कि आने वाले कुछ दशकों में यह आंकड़ा बढ़कर 80 फीसदी तक जा सकता है। यह जानकारी यूनिवर्सिटी ऑफ रीडिंग द्वारा किये एक नए शोध से सामने आई है, जोकि अंतराष्ट्रीय जर्नल नेचर क्लाइमेट चेंज में प्रकाशित हुआ है।

शोध के अनुसार अब तक इसका असर अटलांटिक, प्रशांत और हिन्द महासागर के 20 से 55 फीसदी हिस्से पर पड़ चुका है। जहां जलवायु में आ रहे बदलावों के कारण तापमान और खारेपन में भी बदलाव आ चुका है। जबकि अनुमान है कि सदी के मध्य तक यह 40 से 60 फीसदी तक बढ़ जाएगा। वहीं 2080 तक 55 से 80 फीसदी हिस्से पर इसके असर के कयास लगाए जा रहे हैं।

शोधकर्ताओं के अनुसार उत्तरी गोलार्ध की तुलना में दक्षिणी गोलार्ध में मौजूद महासागरों पर जलवायु परिवर्तन का कहीं अधिक तेजी से प्रभाव पड़ रहा है। अनुमान है कि इनपर पड़ने वाला असर 1980 के बाद से ही सामने आने लगा था।

इसके असर को समझने के लिए वैज्ञानिकों ने क्लाइमेट मॉडल्स की मदद ली है। साथ ही समुद्र के गहरे क्षेत्रों में तापमान और लवणता में आ रहे बदलावों का अवलोकन किया है। जोकि स्पष्ट तौर पर क्लाइमेट चेंज के पड़ रहे असर को दिखाता है। रीडिंग विश्वविद्यालय से जुड़े और इस शोध के सह-लेखक एरिक गुइलार्डी ने बताया कि हम पिछले कई दशकों से जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र की सतह पर तापमान में आ रहे बदलावों का पता लगा रहे हैं। लेकिन इतने विशाल महासागर और विशेष रूप से गहरे भागों में इस परिवर्तन का पता लगाना बहुत अधिक चुनौतीपूर्ण है।

दक्षिणी गोलार्ध में बहुत जल्दी और तेजी से नजर आ रहे हैं परिवर्तन

शोधकर्ताओं के अनुसार इन गहरे क्षेत्रों में गर्मी और लवणता का प्रसार बहुत धीमी गति से होता है ऐसे में जलवायु परिवर्तन के असर को माप पाना आसान नहीं होता। साथ ही समुद्र के जिन हिस्सों में प्राकृतिक रूप से बहुत ज्यादा परिवर्तन आ रहा है वहां भी इसकी माप मुश्किल हो जाती है।

इस शोध से जुड़े शोधकर्ताओं ने इसे समझने के लिए एक मॉडल सिमुलेशन का उपयोग किया है जिसमें मानव के प्रभाव और उसके बिना तापमान और लवणता में आए अंतरों को मापा गया है। साथ ही उन्होंने इसकी शुरुवात और असर के दिखने के समय को भी जानने का प्रयास किया है। शोधकर्ताओं के अनुसार जो परिणाम सामने आए हैं उनके अनुसार उत्तरी गोलार्ध में मौजूद महासागरों में अंतर 2010 से 2030 के बीच सामने आए हैं। जिसका मतलब है कि वहां तापमान और लवणता पर पहले ही असर पड़ना शुरू हो चुका है।

जबकि शोध के अनुसार दक्षिणी गोलार्ध में यह असर कही अधिक तेज गति से हो रहा है। जिससे उसका असर पहले ही दिखने लगा था। यही वजह है कि वैश्विक तापमान और कार्बन भंडारण के दृष्टिकोण से दक्षिणी गोलार्ध में मौजूद महासागर कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। वहां सतह पर मौजूद पानी बड़ी आसानी से नीचे गहरे हिस्सों में भी पहुंच जाता है। जिस वजह से परिवर्तन के लक्षण कहीं पहले नजर आने लगे थे। हालांकि दुनिया के हिस्से में बहुत कम अध्ययन किया गया है यही वजह है कि लम्बे समय से इसके असर को देखा नहीं जा सका था। महासागर ने केवल उसमें मौजूद संसाधनों की वजह से महत्वपूर्ण है, साथ ही यह जलवायु को नियंत्रित करने में भी अहम् भूमिका निभाते हैं। ऐसे में जलवायु परिवर्तन का इनपर पड़ रहा असर हम इन्सानों के लिए भी हानिकारक है। हाल ही में यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया द्वारा किये एक शोध के अनुसार समुद्र हमारे द्वारा उत्सर्जित गर्मी का करीब 90 फीसदी हिस्सा सोख लेते हैं। जबकि नेचर में छपी एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार यह आईपीसीसी के अनुमान से करीब 60 फीसदी ज्यादा तेजी से गर्म हो रहे हैं।

शिकार नहीं, बल्कि जलवायु परिवर्तन के कारण विलुप्त हुए ऊनी गैंडे - शोध

अंतिम हिमयुग के अंत में ऊनी मैमथ, गुफा में रहने वाले शेरों, और ऊनी गैंडों जैसे प्रागैतिहासिक मेगाफॅना के दुनिया भर में विलुप्त होने को, अक्सर प्रारंभिक रूप से मनुष्यों के विस्तारवाद को जिम्मेदार ठहराया गया है। एक अध्ययन में दावा किया गया है कि ऊनी गैंडों के विलुप्त होने का एक कारण जलवायु परिवर्तन है। यह अध्ययन करंट बायोलॉजी नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। मेगाफॅना आमतौर पर एक निश्चित वजन सीमा से ऊपर के जानवरों का वर्णन करता है। इसे चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। सभी में से सबसे बड़े मेगाहर्बिवोर्स (शाकाहारी) 1000 किलोग्राम से बड़े होते हैं। मेगाफॅना प्लीस्टोसीन काल के दौरान लगभग 50 हजार साल पहले तक पृथ्वी पर प्रत्येक महाद्वीप, हिमनदों में रहते थे। इन बड़े शाकाहारियों (मेगाहर्बिवोर्स) में से 14 के प्राचीन डीएनए की अनुक्रमण (सिक्वेंसिंग) करके, शोधकर्ताओं ने पाया कि साइबेरिया से गायब होने से कुछ हजार साल पहले तक ऊनी गैंडों की आबादी स्थिर और विविधता से भरी हुई थी। ठंड में रहने वाले ये प्रजातियां बढ़ते तापमान को सहन नहीं कर पाए और विलुप्त हो गए। शुरू में माना गया था कि मनुष्य चौदह या पंद्रह हजार साल पहले उत्तर पूर्वी साइबेरिया में दिखाई दिया था, तभी ऊनी गैंडे विलुप्त हो गए थे। शोधकर्ता लव डेलेन ने कहा हाल ही में, कई पुरानी मानव के रहने वाली जगहों की खोजें हुई हैं, जिनमें से सबसे प्रसिद्ध लगभग तीस हजार साल पुरानी है। इनमें ऊनी गैंडों के गिरावट से विलुप्त होने तक इन क्षेत्रों में मनुष्यों की पहली उपस्थिति बहुत अधिक मेल नहीं खाती है। लव डेलेन सेंटर फॉर पलेओएोजेनेटिक्स के प्रोफेसर है। यह शोध स्टॉकहोम विश्वविद्यालय और प्राकृतिक इतिहास का स्वीडिश संग्रहालय ने मिलकर किया है। साइबेरिया में ऊनी गैंडों की आबादी और स्थिरता के बारे में जानने के लिए, शोधकर्ताओं ने 14 गैंडों के ऊतक, हड्डी और बालों के नमूनों के डीएनए का अध्ययन किया। सेंटर फॉर पेलोजेनेटिक्स के सह-शोधकर्ता एडाना लॉर्ड कहते हैं हम एक पूर्ण परमाणु जीनोम का अनुक्रम करते हैं, जो उस समय की जनसंख्या के आकार का अनुमान लगाते हैं।

दिन में अधिक होता है झीलों से मीथेन का उत्सर्जन

एक अध्ययन के अनुसार झीलों से मीथेन का प्रवाह रात की तुलना में दिन के दौरान काफी अधिक होता है। नतीजतन, शोध समूह का कहना है कि दुनिया भर में मीथेन उत्सर्जन के मामले में उत्तरी झीलों की भूमिका पहले लगाए गए अनुमानों से 15 फीसदी कम है। यह अध्ययन स्वीडन की लिंकोपिंग विश्वविद्यालय और उमेग विश्वविद्यालय (एलआईयू) के शोधकर्ताओं द्वारा किया गया है।

ताजे पानी की झीलें, नदियां और जलाशय मीथेन के उत्सर्जन का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत हैं। मीथेन दूसरी सबसे अहम ग्रीनहाउस गैस है जो ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार है। मीथेन ग्रीनहाउस गैस होने के नाते पिछले 250 वर्षों से वायुमंडल में सबसे अधिक मात्रा में बढ़ी है।

मीथेन कैसे बनती है ताजे पानी की झीलों, नदियों और जलाशयों में

प्राकृतिक मीथेन स्रोतों में वेटलैंड्स, ताजे पानी की झीलें, नदियां आदि शामिल हैं। एक अन्य शोध के अनुसार जल निकायों/झीलों में ऑक्सीजन की कमी के कारण ऐसे बैक्टीरिया पैदा हो रहे है जो गाद (सेडमन्ट) में मीथेन उत्पादित कर रहे हैं। यह तब गैस के छोटे बुलबुले के रूप में पानी की सतह के नीचे से उपर उठते हैं और परिणामस्वरूप वायुमंडल में मिल जाती है। यह प्रक्रिया तापमान और जैविक सामग्री की उपलब्धता पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, उष्णकटिबंधीय जलाशयों में बड़ी मात्रा में मीथेन का उत्सर्जन होता है।

अन्ना सीकजको कहते हैं मीथेन का प्रवाह अनियमित रूप से बढ़ गया है, हमें वास्तव में पता नहीं है ऐसा क्यों हो रहा है। अन्ना सिसेकोको थमैटिक स्टडीज विभाग में एनवायर्नमेंटल चेंज पर पोस्टडॉक्टरल शोधकर्ता है। जिन्होंने लिंकोपिंग विश्वविद्यालय और उमेग विश्वविद्यालय के सहयोगियों के साथ मिलकर यह अध्ययन किया है।

मीथेन का प्रवाह (फ्लक्स) समय और स्थान के अनुसार अलग-अलग होता है। शोधकर्ता मीथेन के सभी स्रोतों, इसके प्रवाहित होने, सिंक होने और प्रवाह के नियम को समझने की कोशिश कर रहे हैं। एनवायर्नमेंटल चेंज के प्रोफेसर डेविड बैस्टविकेन के नेतृत्व में एलआईयू शोध समूह ने झीलों से मीथेन के प्रवाह को मापा है- हाल ही में पृथ्वी पर दूसरा सबसे बड़ा प्राकृतिक मीथेन स्रोत होने का पता चला है। यह अध्ययन पीएनएएस, प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज में प्रकाशित हुआ है।

अन्ना सीकजको और उनके सहयोगियों ने गर्मियों की शुरुआत से शरद ऋतु तक, जबकि वहां पर बर्फ नहीं जमी थी उस दौरान विभिन्न प्रकार के चार झीलों पर दिन और रात मीथेन प्रवाह की तुलना करने के लिए 4,580 माप लिए। सीकजको कहते हैं कि पूर्व में झीलों से मीथेन का प्रवाह अक्सर मुख्य रूप से दिन के दौरान होता था, लेकिन अब हम दिन और रात दोनों समय में इसकी माप कर रहे हैं।

माप से पता चला कि मीथेन का 80 फीसदी प्रवाह 10:00 बजे से लेकर 04:00 तक काफी अधिक था। स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि हवा, जो आमतौर पर दिन के दौरान काफी तेज होती है, यह पानी में अशांति पैदा करती है जिससे मीथेन उत्सर्जन बढ़ जाता है। हवा इनमें से एक कारक हो सकती है, लेकिन अन्य पर्यावरणीय कारक दिन-रात के अंतर को प्रभावित कर सकते हैं।

अन्ना सिकाज़को कहते हैं कि ताजे पानी की झीलों से मीथेन उत्सर्जन की वर्तमान गणना में दिन और रात के बीच अंतर शामिल नहीं है, जिसका मतलब है कि उत्सर्जन के मामले में उत्तरी झीलों की भूमिका को लगभग 15 फीसदी से अधिक कर दिया गया है।

डेविड बैस्टविकेन कहते हैं इस अध्ययन में, यह आवश्यक है कि हमनें ग्रीनहाउस गैसों के सभी बड़े पैमाने पर प्रवाह का आकलन करते समय और स्थान में अंतर की पहचान पर विचार किया। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो जलवायु मॉडल के गलत होने का खरता बढ़ जाएगा। सभी मीथेन स्रोतों और सिंक होने का अनुमान वैश्विक मीथेन बजट के माध्यम से जुड़ा हुआ है। कुछ प्रवाह के गलत अनुमान से पूरे बजट पर इसका प्रभाव पड़ेगा।

Global School Of Excellence

Ward no. 3, Goharganj Road Obedullaganj, Distt. Raisen M.P
Website: www.globalschoolofexcellence.in
Contact No. 6269970073/74
E-Mail - gseobedullaganj02@gmail.com
The school invites application for the post of Special Educator.
➢ Qualification - Graduate with B.Ed (Special Education)
➢ Interested candidates may apply through filling online form on school website.

Principal

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008